IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 4, December 2025
Impact Factor: 7.67

हस्तकला के अप्रतिम प्रतिमान : विन्ध्य में निर्मित सुपाड़ी स्थापत्य

अंजली सोनी

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, (म.प्र.)

डॉ. सुधा सोनी

प्राध्यापक इतिहास विभाग

शास. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध सारांश :

हस्तशिल्प मानव सभ्यता के विकास की विभिन्न कहानियों को अपने में सुदीर्घ फलक में समेटे हुए है। मानव जब से रचनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर हुआ तभी से उसे जीव–जगत में एक नई पहचान मिली और वह प्रकृति के जीवों में श्रेष्ठ होने का गौरव हासिल किया। यह उपलब्धि मानव द्वारा निर्मित हस्तशिल्प कला से उद्भूत हुआ है। मानव ने पहले आवास बनाया फिर वस्त्र बनाये फिर अपने मनोरंजन हेतु विभिन्न प्रकार के यंत्रों का निर्माण किया और अपनी कल्पना शक्ति को भूमि से विस्तारित कर आकाश तक पहुंचाया। अद्भुत शिल्प मानव के हाथों से आकार पा करके मानव में ब्रह्म शक्ति का विस्तार किया। विभिन्न प्रकार की पुरा निर्मित वस्तुएं विन्ध्य के विभिन्न अंचलों में आज भी आदिमशिल्प को समेटे हुए है। बात शैल चित्र की करें या विविध क्षेत्रों में संरक्षित खण्डित मूर्तियाँ प्रस्तरखण्ड तथा दैनिक उपभोग की वस्तुओं के अवशेष सब कुछ मिलते हैं। समय अन्तराल बाद कला संस्कृति के विविध प्रतिमान भी विन्ध्य की विराट धरा में मिलते हैं। यह वही भू–भाग है जहाँ तानसेन के संगीत यंत्र, बैजू बावरा के ताल वाद्य तथा सुपाड़ी से निर्मित अप्रतिम सौन्दर्य बोध कराते विविध प्रकार के देवी–देवताओं के मनोहारी स्वरूपों का दर्शन आज भी देखने को मिलता है। विन्ध्य के केन्द्रीय नगर रीवा में आने वाले सुदूर के अतिथियों को यहाँ पहचान के रूप में सुपाड़ी से निर्मित आकर्षक और दिव्य मूर्तियाँ भेंट की जाती हैं जिसे पाकर उच्चकलाविद्, व्यक्तित्व गौरव की अनुभूति करते हैं। इन्हीं बिन्दुओं को केन्द्र में रखते हुए इस अंचल में सुपाड़ी स्थापत्य के विकास के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है।

प्रस्तावना :–

हस्तशिल्प समुदाय की स्थिति बदलती ऐतिहासिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के साथ प्रत्येक काल में रूपांतरित होती रही है। जिस प्रकार हस्तशिल्प के उत्पाद बनाए और बेचे जाते हैं, उसमें भी महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है। पिछले समय के संदर्भ में हम आदान–प्रदान प्रणाली, आंतरिक और बाहरी व्यापार की बात करते हैं, जो उपनिवेश काल के दौरान व्यापार में हुआ। आज हम उन चुनौतियों की चर्चा करते हैं, जो वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में हस्तशिल्प के उचित विपणन में निहित हैं। ये सभी अध्याय आपस में संबंधित है, जिससे विभिन्न ऐतिहासिक कालों में हस्तशिल्प के सामाजिक और आर्थिक पक्षों का सिंहावलोकन किया जा सके। पहली इकाई में भूतकाल में हस्तशिल्प की अवस्था को समझाया गया है कि कई सौ वर्षों में हस्तशिल्प के कौशल किस प्रकार उच्च विशेषज्ञता वाले कलात्मक रूपों में विकसित हुए और आर्थिक व सांस्कृतिक बदलाव होने पर इनसे भारत की आज़ादी के पहले के युग में क्या बदलाव आया।

भारत में हस्तशिल्प की समझ एक विशेष गतिविधि बन गई है, जो इतनी गुंथी हुई और जटिल है कि सभी समुदायों को कुछ विशेष हस्तशिल्प उत्पाद के उत्पादन में विशेषज्ञता पाने की ज़रूरत है। हस्तशिल्प के विविध उत्पाद भविष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण चुनौतियों में से एक है – डिज़ाइन विशेषज्ञता, कौशल तथा कलात्मकता को संरक्षित और पोषित करने के अर्थोपाय खोजना, जिससे भारतीय हस्तशिल्प परंपरा दुनिया में अपनी अनोखी स्थिति को बनाए रखना सुनिश्चित हो सकें।

भारतीय हस्तशिल्प की सुंदरता और चमक तथा कच्ची सामग्री की समृद्धि ने यूरोपीय व्यापारियों को भारत के साथ व्यापार संबंध बनाने के लिए आकर्षित किया, जिससे अंततः यहाँ उपनिवेश शासन लागू हुआ। उपनिवेश काल के दौरान यूरोपीय औद्योगिक क्रांति ने ही भारत में हस्तशिल्प और हस्तनिर्मित उत्पादों के लिए जोखिम पैदा किया। यही वह अवधि थी, जो मशीन बनाम हाथ के विवाद का केंद्र थी ।

हस्तशिल्प के क्षेत्र में संगीत वाद्ययंत्रों का बहुत ही गहरा सम्बन्ध रहा है जिसमें ज्यादातर काष्ठकलाकृति पुरातन काल में बनाई जाती थी समय के साथ धातु और अन्य अयस्कों को मिलाकर आकर्षक और हल्के तथा मजबूत वाद्ययंत्र बनाये जाने लगे जिनमें मुख्य रूप से ढोलक, हारमोनियम, तबला, झांझ, खंझनी, सारंगी, बीन, डमरू, आधुनिक शैली के गिटार, उत्सव एवं आयोजन में बजाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों का निर्माण प्रचुर मात्रा में कलाकारों द्वारा किया जाता है जिनकी लोकप्रियता और जनस्वीकार्यता आदिकाल से निरंतर इनकी महत्ता बनी हुई है।

बच्चों के खेलने के लिए प्रयुक्त लकड़ी की गाड़ियाँ बनाई जाती हैं। इन गाड़ियों को बनाने में आम की लकड़ी, रंग तथा कीलें इत्यादि आवश्यक सामग्री के रुप में प्रयुक्त होती हैं। इन गाड़ियों को बनाने का तरीका सरल तथा सीधा सा है। सबसे पहले लकड़ी की सहायता से लम्बी छड़ें, छोटे–छोटे पहिए तथा क्रास की आकृति वाले चक्र बना लिए जाते हैं। अब इन समस्त टुकड़ों पर रुचि के अनुसार रंग लगा दिए जाते हैं। अगले चरण में लकड़ी की छड़ के निचले सिरे की ओर कील की सहायता से पहिया और क्रांस की आकृति वाला चक्र लगा दिया जाता है।

आकर्षक वस्त्र धारण करना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आकर्षक वस्त्रों में जरी की कढ़ाई से युक्त परिधान विशेष स्थान रखते हैं। बुनकरों के द्वारा जरी की कढ़ाई के लिए न केवल सम्पूर्ण देश में वरन् दूसरे देशों में भी लोकप्रिय है। विन्ध्य में जरी की कढ़ाई मुख्यतः दुपट्टों, चुन्नियों तथा साड़ियों पर की जाती है। सर्वप्रथम कारीगर कपड़े पर स्टन्सिल की सहायता से डिजायन छाप लेते हैं। इसके बाद कपड़े को लकड़ी से निर्मित एक चौकोर अड्डे (फ्रेम) पर खींचकर तान दिया जाता है। अगले चरण में कारीगर एक नुकीली सुई में धागा डालकर डिजायन के ऊपर कढ़ाई करते हैं।

प्रायः एक डिजायन में कई रंगों के धागों का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए कारीगर को एक ही डिजायन पर अलग–अलग रंग के धागों से अनेक बार कढ़ाई करनी पड़ती है। कढ़ाई के लिए प्रयुक्त धागों में रेशम के धागे प्रमुख होते हैं। चूँकि जरी का यह कार्य अत्यन्त बारीक काम है, इसलिए इस कला में प्रायः युवा कारीगर ही संलग्न देखे जाते हैं। मुकुन्दपुर स्थान लकड़ी से बनाई जाने वाली विभिन्न वस्तुओं के कारण प्रसिद्धी के चरम पर थी। यहाँ पर बनाई जाने वाली लकड़ी की वस्तुओं में निम्नलिखित अत्यन्त लोकप्रिय हैं–(अ) ढोलक (आ) छड़ी (इ) चकला–बेलन (ई) बैठने में प्रयुक्त पिढियाँ।

यद्यपि उपरोक्त वस्तुएं देश के अन्य हिस्सों में भी बनाई जाती हैं, परन्तु अमरकंटक में निर्मित लकड़ी की वस्तुओं की सर्वोपरि विशेषता है– उनकी नक्काशी (छड़ी के संदर्भ में) अमरकंटक में निर्मित लकड़ी की वस्तुओं में ढोलक की प्रसिद्धी दूर–दूर तक है। यहाँ बनाई जाने वाली ढोलकों की देश के अनेक हिस्सों में माँग है। अमरकंटक में निर्मित लकड़ी की वस्तुएं सुन्दरता तथा मजबूती दोनों ही में अग्रणी हैं। नगर के सैकड़ों व्यक्ति इस कला से जुड़े हुए हैं तथा अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं।

भारत में हस्तशिल्प की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इसका इस्तेमाल सदियों से व्यापक दार्शनिक, तत्वज्ञान एवं सामाजिक अवधारणाओं के रूप में होता रहा है। अनेक शब्दों, पैमानों के रूपों, रंगों और वस्तुओं के मूल में हस्तशिल्प ही है। ज़िंदगी के 'ताने बाने' से हम सभी अवगत हैं। इसमें जाति, लिंग, धर्म और सामाजिक कार्य सभी की महत्वपूर्ण एवं अलग–अलग भूमिकाएँ हैं। जब हम रणनीति अख्तियार करते हैं तो सभी भिन्न पहलुओं पर विचार करने की ज़रूरत होती है । क्या बहिष्करण को जागरूकता में बदला जा सकता है? इसका कोई व्यापक उत्तर नहीं है–हम केवल इस हस्तशिल्प क्षेत्र की विविधता एवं जटिलता की समझ विकसित करने का प्रयास कर सकते हैं। हमारे समूह का तर्क यह है कि हस्तशिल्प–सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों रूप से–विद्यालय और समाज के सभी सैक्टर और क्षेत्रों के बच्चों के लिए भावनात्मक, आर्थिक एवं बौद्धिक सशक्तीकरण का मज़बूत माध्यम हो सकता है।

हस्तशिल्प को किसी व्यक्ति के सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक एवं मानसिक विकास को आकृति प्रदान करने का ज़रिया बनाया जा सकता है। यह सभी के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने का ज़रिया है। यह लोकतंत्र का समर्थन करता है और उसके विषय में बताता है 1960 के राज्यनियंत्रणीय तरीके नहीं वरन् एक ऐसे तरीके से जो व्यक्तियों तथा समुदायों के सशक्तीकरण को बढ़ावा दे। यह उत्पादक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने वाला होता है। यह टिकाऊ विकास को बढ़ावा देने वाला है। यह क्षेत्र पहचान, हमारे संबंधों, खुद को और व्यापक समूहों को, जिसमें जीवन का गुजर–बसर करते हैं, को मूल्य देना सिखाता है। यह समाज की विविधता को बढ़ावा देता है। यह उस पर्यावरण को मूल्य प्रदान करता है जिसमें हम रहते हैं।

हस्तकला ऐसे कलात्मक कार्य को कहते हैं जो उपयोगी होने के साथ साथ सजाने के काम आता है तथा जिसे मुख्यतः हाथ से या सरल औजारों की सहायता से ही बनाया जाता है। ऐसी कलाओं का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व होता है। इसके विपरीत ऐसी चीजें हस्तशिल्प की श्रेणी में नहीं आती जो मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर बनाये जाते हैं। हस्तशिल्प सदियों से भारत के सांस्कृतिक ताने–बाने का अभिन्न अंग रहा है। यह क्षेत्र देश के विविध कला रूपों और शिल्प कौशल को प्रदर्शित करता है और इसके आर्थिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वतंत्रता–पूर्व काल से लेकर आज तक और भविष्य की ओर देखते हुए, भारत में हस्तशिल्प के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता।

स्वतंत्रता से पहले, भारत में हस्तशिल्प उद्योग फल–फूल रहा था। कारीगर स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक मांग वाले उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला का उत्पादन करते थे। हस्तशिल्प कई समुदायों के लिए आय और रोजगार का एक प्रमुख स्रोत थे, जिन्होंने अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मिट्टी के बर्तन, बुनाई, कढ़ाई और धातुकर्म जैसे पारंपरिक शिल्प फल–फूल रहे थे, और कारीगर अपने कौशल को पीढ़ियों तक आगे बढ़ाते रहे। आधुनिक हस्तशिल्प समय की एक अवधारणा को दर्शाता है पारंपरिक पूर्वजों आधुनिक वंश के अंत में एक बन जाएगा परंपरा आधुनिक आधुनिक सामाजिक आर्थिक, उत्पादन की स्थिति, वातावरण, जीवन शैली, फैशन और सांस्कृतिक स्थिति में है, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में परिवर्तन की अवधारणा और, इसलिए, यह कहा जाना चाहिए पारंपरिक शिल्प की आधुनिक शिल्प आधुनिक रूप है एक लंबी और गौरवशाली इतिहास के साथ हस्तशिल्प की पारंपरिक कला और शिल्प, चीनी संस्कृति और कला विकास के पूरे इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सांस्कृतिक इतिहास, कला इतिहास, डिजाइन के इतिहास, कला और शिल्प के विकास की प्रक्रिया में मुख्य सामग्री के माध्यम से चलाता है, जो एक है सुधार और खोलने के बाद, संस्कृति और कला के साथ, डिजाइन कला, समृद्धि और हस्तनिर्मित कला, सार्वजनिक स्थान और रहने की जगह का विकास भी खुद को समृद्ध करने के लिए शुरू किया, सौंदर्य और कलात्मक डिजाइन अद्यतन, नई सामग्री, नई प्रौद्योगिकी की अवधारणा का विकास परंपरागत शिल्प को बढ़ावा देने के लिए बड़ी संख्या में दिखाई दिया जनता द्वारा स्वीकार किया जा रहा का एक आधुनिक रूप के लिए संक्रमण, देखने के मौजूदा बिंदु से, हस्तकला उद्योग

सामाजिक रूप से वंचित स्थिति, उद्योग में व्यापार संचार प्रणाली की कमी समग्र शैक्षिक मार्गदर्शन की कमी है, और आत्म विकास पर्यावरण हस्तशिल्प के अभाव में अभी भी है।

आभूषण का प्रयोग मुख्यतः महिलाएँ अपने को संवारने में करती रही हैं। आदिवासी समुदाय में इनका महत्व बुरी आत्माओं को दूर भगाने के लिए है। इसीलिए देवी–देवताओं की मूर्तियों के आकार वाले ताबीज़ों एवं लटकनों का प्रयोग भी ये करते हैं। अलग–अलग अंगों के लिए इन आभूषणों की पूरी क़िस्म मौजूद है।

समय के साथ, स्वर्ण आभूषण समाज में इसके धारक की आर्थिक अवस्था प्रदर्शित करने का साधन बन गए. जिस स्त्री के पास जितना अधिक स्वर्ण होता था, वह उतनी ही संपन्न मानी जाने लगी. इससे यह अभिप्राय भी निकलता था कि उसका पति उसे अत्यधिक प्यार करता था और उसकी आवश्यकताएं पूरे करने में सक्षम था। स्वर्ण आभूषण बनाने के कला का विकास होता गया और पारंपरिक शैलियों से और अधिक अलंकृत शिल्प, रूपरेखा एवं स्वरुप विकसित होते गए।

धीरे–धीरे स्वर्ण व्यक्ति के मनोभाव की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया. विशेषकर, कुचिपुड़ी, कत्थक या भरतनाट्यम जैसे विभिन्न नृत्यों के माध्यम से इन भावों को अभिव्यक्ति मिली. नर्तकों और नर्तकियों ने जटिल कलाकृतियों वाले स्वर्ण आभूषण पहनना आरम्भ किया जो नृत्य में उनके लय–ताल और भाव–भंगिमाओं से मेल खाते थे। स्वर्ण राजसी वैभव का भी प्रतीक बन गया. राजपरिवारों ने सबसे कुशल और प्रसिद्ध कारीगरों द्वारा बनाए गए सुन्दर एवं भव्य विरासतों से अपने–अपने महलों को भरकर स्वर्ण की लोकप्रियता को आगे बढाया।

स्वर्ण आभूषणों को परिवार में स्त्री का भविष्य सुरक्षित करने का साधन भी माना जाता है. विवाह के समय बेटियों को उनके माता–पिता द्वारा स्त्रीधन के रूप में स्वर्ण आभूषण दिए जाते हैं, ताकि आर्थिक संकट के समय उनके काम आ सके. मंगलसूत्र, कंगन और मांग टिक्का जैसे कुछ आभूषण स्त्री के विवाहित होने के पारंपरिक प्रतीक होते हैं। इसी प्रकार, नवजात शिशुओं को आशीर्वाद और भविष्य की सुरक्षा के तौर पर मंहगे स्वर्ण आभूषण भेंट किये जाते हैं।

आधुनिक आभूषणों का विकास समाज में बदलाव के साथ क्रमिक रूप से हुआ है. आजकल जटिल और भारी आभूषण वैवाहिक समारोहों, त्योहारों और इस तरह के भव्य आयोजनों में ही पहने जाते हैं. आधुनिक भारतीय स्त्रियाँ दैनिक प्रयोग के लिए हलके और मजबूत स्वर्ण आभूषण पसंद करतीं हैं।

प्राचीन काल से पुरुष और स्त्रियाँ विभिन्न आभूषणों से स्वयं को अलंकृत करती रहीं हैं। स्वर्ण आभूषणों के प्रति स्त्रियों का विशेष लगाव रहा है. उनके आभूषण देखने योग्य होते हैं और देश में हर जगह व्यापक रूप से मिलते हैं। आभूषणों में ज़ेवरात के प्रति आकर्षण अब भी कम नहीं हुआ है हालांकि पसंद और तौर तरीकों में बदलाव ज़रूर हुआ है। कभी सोने की चिड़ियाँ कहा जाने वाला भारत आज भी सोने का सबसे बड़ा उपभोक्ता है और मुल्क का आभूषण उद्योग सबसे तेज़ी से विकास कर रहे क्षेत्रों में शुमार किया जाता है।

कभी सोने–चाँदी, हीरे ज़वाहरात के ज़ख़ीरे को अपनी शान और ताक़त के प्रदर्शन का ज़रिया मानने की राजा महाराजाओं की धारणा वाले देश में शादी ब्याह तथा अन्य रस्मों में आज भी आभूषण को सबसे शानदार तोहफा माना जाता है। भारत में श्रृंगार का अभिन्न अंग और महिलाओं की कमज़ोरी समझे जाने वाले आभूषणों की चमक कभी फीकी नहीं पड़ी।ख्,

वर्तमान रीवा जिला का अतीत उतार–चढ़ाव भरा रहा है। 17वीं–18वीं सदी में यह क्षेत्र रीवा स्टेट के नाम से ब्रिटिश हुकूमत के प्रभाव में रहा है। रीवा स्टेट के प्रथम पोलिटिकल एजेन्ट ओसवर्न नियुक्त किये गये थे जिनका मुख्यालय वर्तमान सतना नगर हुआ करता था, जिन दिनों ओसवर्न पोलिटिकल एजेंट नियुक्त हुए सतना नगर सांकेतिक नगर के रूप में था। ब्रिटिश हुकूमत में रेलवे लाईन निकलने एवं पोलिटिकल एजेंट के मुख्यालय बनाये जाने से सतना का समय–सापेक्ष विकास

हुआ। यह वह दौर था जब रीवा नगर बघेलवंशीय शासकों की राजधानी हुआ करता था। राजकीय सत्ता का केन्द्र होने के कारण रीवा की अलग पहचान थी। यह नगर जनआस्था का केन्द्र था। राजधानी होने के कारण यहाँ की बसाहट मूलतः विद्वतजनों, कलामनीषियों शिल्पकलाकार के अलावा प्रसिद्ध चिंतनशील विद्वानों का केन्द्र रहा है।

वर्तमान रीवा मुख्यालय के अतीत पर गौर करें तो रीवा से कुछ किलोमीटर दूर कल्चुरि कालीन पुरावशेष एवं संस्कृति दिखती हैं इनकी राजधानी वर्तमान गुढ़ के पास हुआ करती थी जिसके अभी भी पुरातत्विक अवशेष प्रचुर संख्या में मिलते हैं। कल्चुरि कालीन में शिल्प का विकास चरम पर था। इस काल के ज्यादातर शिल्प प्रस्तर पर उकेरे गये थे जिनके अवशेष पुरातत्व विभाग के संग्रहालयों में विवरण सहित संरक्षित हैं, इनमें से ज्यादातर मूर्तियों के रूप में शिलाखण्ड प्राप्त होते हैं कुछ पारिवारिक एवं वैभव सम्पन्नता की कलाकृतियां भी मिलती हैं जिन सबके चलते इस बात का भान होता है कि ''कल्चुरिकालीन समृद्धि शिल्पगत वैभवशाली थी जिसकी छाया और प्रेरणा स्थानीय जनमानस को प्रभावित करती रही है और लगभग 1000 से 1500 वर्ष पूर्व की कलाकृतियाँ अभी भी जनमानस के मन मस्तिष्क में संचित हैं।''

पुरातन ग्रन्थों में विन्ध्ययवटी तथा मध्यकालीन साहित्य में बघेलखण्ड के नाम से रीवा की भूमि चिन्हित रही है। यह परिक्षेत्र अलग–अलग कालखण्डों में तात्कालिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का क्षेत्र रहा है। एक समय ऐसा था जब चित्रकूट आस्था का केन्द्र रहा जहाँ माता अनुसुइया एवं भरतराम मिलाप स्थल चर्चा में रहा। एक दौर था जब माँ शारदा की भूमि आस्था का केन्द्र रही, बाणसागर परिक्षेत्र जहाँ मार्कण्डेय आश्रम एवं अन्य साधना स्थल सांस्कृतिक एवं पौराणिक स्थापत्य के सूत्रधार रहें। कल्चुर काल में गोरगी आदि का स्थापत्य प्रभावशाली रहा, पश्चात् बघेलवंश के शासकों के दौर में कांलिजर, बांधवगढ़ एवं रीवा समय–सापेक्ष विकसित होता गया। इन विभिन्न स्थलों की पहचान यहाँ के हस्तशिल्प कलावीरों के माध्यम से होता रहा है। इस तरह विभिन्न कालखण्डों में अलग–अलग तरह की हस्तकलाएँ कलाकारों द्वारा परिमार्जित और परिष्कृत होती गयी। कलाओं का रूप तो बदला, परन्तु उनकी अपनी अलग विशिष्ट पहचान बनी रही।

रीवा जिले में हस्तशिल्प की अपनी अलग पहचान है। बघेल सामान्य काल में काष्ठ कला बहुत विकसित रही है जिसके अवशेष और प्रतिकृतियाँ प्रचुर मिलती हैं। काष्ठ कला कृतियों में दैनिक उपयोग की वस्तुएँ और आवास तथा प्रसाधन की सामग्री है। शिल्प के अभिनव प्रयोग में सुपारी से खिलौने और मूर्तियॉ बनानेका कार्य बेजोड़ हस्तशिल्प के क्षेत्र में आता है इस कला ने रीवा को राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई है। रीवा के अतीत पृष्ठभूमि से वर्तमान तक के विभिन्न आख्यानों और कालखण्डों से जुड़ी स्मृतियाँ और किंवदंतियाँ तरह–तरह के घटना चक्रों के माध्यम से प्रभावशाली हस्तशिल्पों का परिचयात्मक परिदृश्य दिखाती हैं जिससे पता चलता है कि इस क्षेत्र में पुरातन काल में मूर्ति एवं चित्रकला का प्रभाव रहा है। जिन दिनों वनांचलों में विभिन्न प्रकार के शैलचित्र अंकित किये हुए आज भी मिलते हैं यह शैलचित्र मानव के भीतर कल्पना शक्ति के माध्यम से चित्रकला के आदिकालीन स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं।

रीवा में लकड़ी के साथ ही सुपारी पर अद्भुत शिल्प तैयार किया जाता है। रीवा में सुपारियों पर कलाकारी करके उनकी मूर्तियाँ और छड़ियाँ बनाई जाती हैं। सुपारियों का प्रयोग करके यहां बनाए जाने वाले विघ्न विनाशक भगवान गणेश की मूर्तियों की माँग दूर–दूर तक होती है। सुपारियों और लकड़ी का प्रयोग करके यहां पर खिलौने एवं सजावटी सामान भी बनाए जाते हैं। मृण, मिट्टी अथवा माटी की शिल्पकला का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि स्वयं मानव का। मृण शिल्पों के प्राप्त नमूनों के द्वारा मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति का सर्वाधिक तथ्यपरक और स्पष्ट अध्ययन किया जाता रहा है। समय व काल की परतों में दबी सभ्यता व संस्कृतियों के प्रमाण के रूप में मिट्टी की प्रतिमाएं एवं पात्र व खिलौने हमारे समक्ष अपने गौरवशाली इतिहास का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

लोक कला से जुड़ी पूर्व प्रचलित पारम्परिक काष्ठ शिल्प–क्षेत्र की नक्काषी व डिजाइनों में जहां अनूपपुर में लकड़ी की नक्काशी एवं इसी श्रृंखला में कलाकारों द्वारा लकड़ी पर उत्कृष्ट नक्काशी का काम मुख्य आकर्षण का केन्द्र है। नक्काशी के लिए प्रयुक्त फूल–पत्तियों, लता–बेलों के समूह या एकल रूप, कमल, ताम्बुल, पषु–पक्षियों की आकृतियां जैसेहाथी, घोड़े, ऊँट, सिंह, हिरण, मोर, हंस, तोता अथवा स्वास्तिक, बिन्दु श्रृंखला, ज्यामितीय रूप में आड़ी–तिरछी रेखाएं आदि परम्परागत अलंकरणों का अनूठा प्रयोग रंगों द्वारा मीनाकारी एवं हस्त शिल्प कलाकारों द्वारा काष्ठ पर किया जाता है। प्राचीन काल में लकड़ी पर नक्काशी के विभिन्न स्वरूपों में मुख्यतः दरवाजे, खिड़की, खाट, पाट, चौखट, हुक्का, तौरण, बर्तन, बाजोट, पालना, बैलगाड़ी, खिलौने, अलमारी, चौकी व शतरंज की मौहरें आदि के साथ ही आधुनिक काल के सोफा सेट, सेंट्रल व साइड टेबल, डाइनिंग व सेट, डबल व सिंगल बेड, टी वी ट्राली या ड्रेसिंग रेक तथा दरवाजे खिड़कियां आदि नवीन स्वरूप पर नक्काशी आज भी उत्कृ श्ट पहचान बना रहे हैं।

रीवा जिले में सुपाड़ी कला और सुपाड़ी से बने खिलौने एक प्रमुख हस्तशिल्प और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में सुपाड़ी का उपयोग विभिन्न प्रकार के कलात्मक और सजावटी सामान बनाने के लिए किया जाता है। सुपाड़ी से बने खिलौने खासतौर पर बच्चों के लिए आकर्षक और पर्यावरण के अनुकूल होते हैं। ''सुपाड़ी कला'' का इतिहास बहुत पुराना है और यह भारत के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित है। रीवा जिले में यह कला सदियों से चली आ रही है।

हस्तशिल्प में एक नया प्रयोग रीवा में संयोग से हुआ। घटना यह रही कि ''रीवा महाराजा श्रीमान् गुलाब सिंह जुदेव जो पान खाने के शौकीन थे एक बार वे अपने प्रिय सभासद से चर्चा करते हुए सहज ही कहा कि पान की सुपाड़ी कुछ ऐसी होती कि मुख में रखते ही घुल जाय पर इन दिनों की सुपाड़ी आये दिन दाँतों में फंस जाती है। सभासद ने समस्या के समाधान के लिए पनवादी से इस मसले पर बात किया। महाराज की बात सुनकर पनवाड़ी सोचने लगा कुछ समय पश्चात् खराध का कार्य करने वाले काष्ठ शिल्प के शिल्पी भगवानदीन कुन्देर से मिलकर महाराज की ख्वाहिश को बताते हुए चिंतत स्वर में बोला कि समझ में नहीं आता महाराजा के लिए ऐसी सुपाड़ी कहाँ से लांये। यदि आप खराद से बहुत ही महीन और कोमल लच्छीदार सुपारी बना दे तो मेरा भला होगा।''

भगवानदीन कुन्देर सोचने लगे और उन्होंने कुछ सुपाड़ियों को छाँटकर पानी में भिगो दिया। दो दिन बाद सुपाड़ियों को निकालकर खराद में लगाया जिससे सुपाड़ी बहुत महीन और मुलायम लच्छेदार बन गई। सुपाड़ी का कुछ भाग पानवाड़ी को दे दिया शेष बची सुपाड़ी के एक शिरे को पकड़ा तो वह पतले धागे जैसी फैल गई। आश्चर्य से देखते हुए भगवानदीन कुन्देर ने आहिस्ते से उसे समेटा और बड़ी सावधानी से छोटी सी डिबिया के रूप में उसे परिवर्तित किया। सुपाड़ी के लच्छे से बनी डिबिया देकर 'भगवानदीन' बहुत खुश हुआ इसी तरह और डिबिया क्यों न बनायें। सुपाड़ियों को छाँटकर पुनः पानी में भिगो दिया तथा उससे लच्छे निकालकर कई तरह की डिबिया बनाया उन्हीं में से एक डिबिया पानमसाला रखने के लिए बनाई और महाराजा गुलाब सिंह जूदेव के पास पनवाड़ी के माध्यम से भिजवाया। उसे देखकर महाराजा अत्यधिक प्रसन्न हुए और कुछ नया बनाकर लाने को कहा।

महाराजा के निर्देश पर भगवानदीन ने ''सिन्दूरदानी'' बनाकर महाराजा साहब के सामने पेश किया। घटना वर्ष 1942 की है जिस पर खुश होकर बतौर पुरस्कार महाराजा गुलाब सिंह ने हस्तशिल्पी भगवानदीन कुन्देर को 51 रुपये पुरस्कार में दिये। जिसकी चर्चा रीवा आस–पास के नगरों में फैली गई। शिल्पी भगवानदीन के पुत्र 'रामसिया कुन्देर' उस समय किशोरावस्था में थे। उन्हें महाराजा द्वारा मिला प्रोत्साहन बहुत प्रभावित किया और वे अपने पिता के साथ मिलकर सुपाड़ी से तरह–तरह के शिल्प बनाने की कला में पारंगत हो गये। आजादी पश्चात् महाराजा मार्तण्ड सिंह ने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ.

DOI: 10.48175/IJARSCT-30598

राजेन्द्र प्रसाद से रीवा में सुपाड़ी से निर्मित होने वाले विभिन्न प्रकार के आकार्षक एवं सुन्दर शिल्प वस्तुएँ तैयार करने की जानकारी दी और कहा कि हम आप को रीवा की शिल्प भेंट करना चाहते हैं। जिस पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि हम इस शिल्प के शिल्पकार से मिलना चाहेंगे।

रीवा आकर महाराजा मार्तण्ड सिंह जूदेव ने रामसिया कुन्देर को बुलाकर यह बात बताई और कहा कि राष्ट्रपति के लिए सुन्दर सा उपहार बनाइये जिस पर रामसिया कुन्देर ने सुपाड़ी से रूल (छड़ी) तैयार किया जो राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भेंट की। वर्ष 1969 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के रीवा आगमन पर शिल्पकार रामसिया कुन्देर द्वारा सुपाड़ी की प्रतिमा भेंट की गई। जिस पर उन्होंने कहा कि उस शिल्पकार को बुलाइये जिसने यह कलाकृति तैयार की है। तब रामसिया कुन्देर को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी से मिलवाया गया बाद में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सेन्ट्रल बैंक का बोर्ड ऑफ डायरेक्टर में शिल्पकार रामसिया कुंदेर को रखने का मनोनीत करने का निर्देश दिया जिसके लिए उन्होंने रीवा के सुपाड़ी शिल्प कलाकार रामसिया कुन्देर को शामिल करने का निर्देश दिया। रामसिया कुन्देर अपनी कलाकृति के चलते आठ वर्ष तक बोर्ड ऑफ डारेक्टर के सदस्य रहे। बाद में वे मध्य प्रदेश हस्तशिल्प विकास निगम में सदस्य बनाये गये जहाँ उनका कार्यकाल 5 वर्ष के लिए रहा। निगम से मुक्त होने पर वे रीवा–सीधी ग्रामीण बैंक में भी 5 वर्ष के लिए नियुक्त हुए।

सुपाड़ी शिल्प एक नई पहचान देने वाले रामसिया कुन्देर स्थानीय स्तर पर कई कलाकारों को प्रोत्साहित कर इस कला से जोड़ा। उनके माध्यम से सुपाड़ी से विभिन्न प्रकार के कलाकृतियां तैयार की जाती हैं। इन कलाकृतियों में गणेश जी की मूर्ति, लक्ष्मी, राधाकृष्ण, शिवशंकर, पार्वती तथा शिवलिंग की सुन्दर आकर्षक मनोहारी कलाकृतियां तैयार की जाती हैं। रीवा तथा पड़ोसी शहरों में लोग अपने अतिथियों को सुपाड़ी शिल्प से निर्मित विभिन्न प्रकार की कलाकृतियों को उपहार के रूप में भेंट करने में गौरव महशूश करते हैं सुपाड़ी से निर्मित कुछ कलाकृतियाँ इस प्रकार है–1. श्री गणेश मूर्ति, 2. राधाकृष्ण मूर्ति, 3. भगवान शिव की मूर्ति, 4. शिव लिंग प्रतिमा और 5. अन्य आपेक्षित शिल्प।

हस्तशिल्प कला के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग सुपाड़ी के माध्यम से मूर्तियों एवं आकर्षक मनोहारी वस्तुओं का निर्माण है। सुपाड़ी के माध्यम से बनाने की प्रक्रिया जटिल एवं कलात्मक है। विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुओं के निर्माण के लिये प्रथम 'सामग्री का चयन'' किया जाता है। इसके लिये सुपाड़ी के ताजे बीजों का चयन किया जाता है, क्योंकि यह मजबूत और हल्के होते हैं। इन्हें विशेष रूप से मूर्तियों के आकार के अनुसार कटा और तराशा जाता है। इसके बाद मनचाही डिज़ाइन और आकार देने के लिये कारीगर मूर्तियों के डिजाइन पर काम करते हैं, जो हिंदू धर्म के देवी–देवताओं, पशु–प्राणी, और अन्य धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतीकों पर आधारित होते हैं। इन मूर्तियों का आकार भी भिन्न–भिन्न हो सकता है, छोटे से लेकर बड़े आकार तक की मूर्तियों का निर्माण संभव हो पाता है।

मूर्तियों के निर्माण में ''कलात्मक और सौंदर्यपूर्ण आकर्षण'' का विशेष ध्यान दिया जाता है। मूर्तियों को आकर्षक बनाने के लिए इनमें शिल्पकला का उपयोग किया जाता है। रंगीन पेंट और सोने–चांदी की परत चढ़ाने के बाद ये मूर्तियाँ और भी सुंदर हो जाती हैं। सुपाड़ी से निर्मित मूर्तियाँ विक्रय के दौरान श्रम और लागत के अनुसार मूल्य निर्धारण कर कारीगर आपेक्षित धन की प्राप्ति करते हैं। गौर करें तो सुपाड़ी की मूर्तियों के ''मूल्य और उपयोग'' समय–सापेक्ष होते हैं। देखा यह गया है कि अन्य शहरों से आने वाले लोग रीवा के मूर्तिकारों से सुपाड़ी के बने हुए विभिन्न प्रकार के वस्तुओं को अपने आगंतकों को उपहार के रूप में देते हैं। इन मूर्तियों को पूजा अर्चना में इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन यह एक परंपरा भी बन गई है, जहां लोग इन मूर्तियों को सजावट के रूप में भी रखते हैं। यह विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित है।

सुपाड़ी से बनने वाले उत्पाद स्थानीय कारीगरों की कला और उनके हुनर को दर्शाते हैं। इस कला का मुख्य उद्देश्य बच्चों के खेलने के लिए सस्ते, सुरक्षित और प्राकृतिक खिलौने बनाना है। सुपाड़ी से बने खिलौने पारंपरिक रूप से प्राकृतिक, पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित और मजबूत होते हैं। इस कला के उत्पादों में अक्सर भारतीय संस्कृति, पशु, पक्षी और अन्य जीव–जंतुओं की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। बच्चों के खिलौने के अलावा, सुपाड़ी से छोटे सजावटी आइटम, धार्मिक मूर्तियाँ, और घर के सजावटी सामान भी बनाए जाते हैं। पशु–आकृतियाँ सुपाड़ी से बने हाथी, बाघ, घोड़ा, और अन्य जानवरों की आकृतियाँ बच्चों के खेलने के लिए बहुत लोकप्रिय हैं। पक्षी और इंसानी आकृतियाँ सुपाड़ी से छोटे–छोटे पक्षियों और मानव आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं, जो न केवल बच्चों के खिलौने होते हैं, बल्कि घरों में सजावट के लिए भी उपयोगी होते हैं। म्यूजिकल खिलौने कुछ सुपाड़ी खिलौने संगीत उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं, जैसे छोटे ड्रम या अन्य ध्वनि उत्पन्न करने वाले खिलौने।

सांस्कृतिक धरोहर सुपाड़ी कला भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस कला के माध्यम से रीवा जिले के कारीगर अपनी पारंपरिक कला और संस्कृति को बनाए रखने में सफल रहे हैं। स्थानीय अर्थव्यवस्था सुपाड़ी से बने खिलौने और अन्य उत्पादों की बिक्री स्थानीय कारीगरों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके द्वारा रोजगार सृजन भी होता है, और यह कारीगरों को अपनी कला को जीवित रखने का अवसर देता है। पर्यावरणीय दृष्टिकोण''रू सुपाड़ी एक प्राकृतिक और जैविक सामग्री है, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक नहीं होती। इसके द्वारा बनाए गए खिलौने प्लास्टिक या अन्य कृत्रिम सामग्रियों के मुकाबले अधिक पर्यावरण सहचर्य होते हैं।

वर्तमान समय में सुपाड़ी से बने खिलौनों का बाजार स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ रहा है। हालांकि, इसके लिए कच्चे माल की उपलब्धता और कारीगरों की कमी कुछ चुनौतियाँ पैदा करती हैं, लेकिन सरकार और विभिन्न संगठन इस कला को प्रोत्साहित करने के लिए योजनाएँ चला रहे हैं। जैसे कि कारीगरों को प्रशिक्षण देना, विपणन के अवसर उपलब्ध कराना और इस कला को और ज्यादा लोकप्रिय बनाने के लिए प्रदर्शनी आयोजित करना। अगर सही प्रोत्साहन और संसाधन मिले, तो सुपाड़ी कला और उससे बने खिलौने न केवल रीवा जिले की पहचान बन सकते हैं, बल्कि यह एक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी अपनी जगह बना सकते हैं। रीवा जिले में सुपाड़ी से बने खिलौने न केवल कला और संस्कृति का प्रतीक हैं, बल्कि यह पर्यावरण को भी संतुलित रखने में मदद करते हैं। इस कला को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के लिए सरकारी योजनाओं और प्रोत्साहनों का लाभ उठाना जरूरी है।

रीवा जिले में सुपाड़ी से बनी मूर्तियाँ एक अद्भुत और पारंपरिक कला का हिस्सा हैं। सुपाड़ी एक सामान्य भारतीय परंपरा का हिस्सा है, जो पत्तियाँ, बीज, और अन्य प्राकृतिक सामग्री से बने विभिन्न प्रकार के कलात्मक उत्पादों के लिए प्रसिद्ध है। यहां की मूर्तियाँ मुख्य रूप से भगवानों, देवी–देवताओं, और अन्य धार्मिक प्रतीकों की होती हैं, जो स्थानीय कारीगरों द्वारा बड़ी सूक्ष्मता से बनाई जाती हैं। हस्तशिल्प के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग रीवा में सुपाड़ी के बनाये गये विभिन्न शिल्प हैं। इन शिल्पों की शुरूआत प्रयोग जनित है। परन्तु सामान्य सी घटना ने सुपाड़ी के अद्भुत कलाओं का श्रीगणेश किया।

इस तरह रीवा में सुपाड़ी की मूर्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, और यहां के कारीगर इन मूर्तियों को बनाने में माहिर होते हैं। यह मूर्तियाँ स्थानीय लोगों के बीच धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखती हैं। यहां के कारीगरों की कड़ी मेहनत और परंपरागत कला इसे अनूठा बनाती है। इस तरह की मूर्तियाँ विशेष रूप से उन लोगों के लिए आकर्षक होती हैं जो भारतीय संस्कृति और कला में गहरी रुचि रखते हैं। यदि आप कभी रीवा जिले की यात्रा करें, तो इन मूर्तियों को देखना न भूलें, क्योंकि ये न केवल कला का उदाहरण हैं, बल्कि क्षेत्रीय सांस्कृतिक धरोहर का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

लोक कला से जुड़ी पूर्व प्रचलित पारम्परिक काष्ठ शिल्प – क्षेत्र की नक्काशी व डिजाइनों में जहां अनूपपुर में लकड़ी की नक्काशी एवं इसी श्रृंखला में कलाकारों द्वारा लकड़ी पर उत्कृष्ट नक्काशी का काम मुख्य आकर्षण का केन्द्र है। नक्काशी के लिए प्रयुक्त फूल–पत्तियों, लता–बेलों के समूह या एकल रूप, कमल, ताम्बुल, पु–पक्षियों की आकृतियां जैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, सिंह, हिरण, मोर, हंस, तोता अथवा स्वास्तिक, बिन्दु श्रृंखला, ज्यामितीय रूप में आड़ी–तिरछी रेखाएं आदि परम्परागत अलंकरणों का अनूठा प्रयोग रंगों द्वारा मीनाकारी एवं हस्त शिल्प कलाकारों द्वारा काष्ठ पर किया जाता है। प्राचीन काल में लकड़ी पर नक्काशी के विभिन्न स्वरूपों में मुख्यतः दरवाजे, खिड़की, खाट, पाट, चौखट, हुक्का, तौरण, बर्तन, बाजोट, पालना, बैलगाड़ी, खिलौने, अलमारी, चौकी व शतरंज की मौहरें आदि के साथ ही आधुनिक काल के सोफा सेट, सेंट्रल व साइड टेबल, डाइनिंग व सेट, डबल व सिंगल बेड, टी वी ट्राली या ड्रेसिंग रेक तथा दरवाजे खिड़कियां आदि नवीन स्वरूप पर नक्काशी आज भी उत्कृष्ट पहचान बना रहे हैं।

रीवा जिले के हस्तकला के क्षेत्र में कार्य करने वाले कलाकारों अर्थात् कारीगरों के सम्बन्ध में विविध जानकारियाँ प्राथमिक स्रोत के माध्यम से प्राप्त की गई। सूचनादाताओं के माध्यम से प्राप्त जानकारियाँ हस्तकलाकारों के वर्तमान परिस्थितियों का एहसास कराती है जिससे स्पष्ट होता है कि एक सुखद अतीत की व्याख्या करते हुए कलाकार पूर्वजों के द्वारा उन दिनों जब रीवा महाराजा के सम्मान में विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुओं का निर्माण करते थे जिससे उन्हें पारितोषित और सम्मान प्राप्त होता था। अच्छे कलाकारों की कृतियों पर उन्हें पुरुस्कार के रूप में महत्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त होती थी। जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता था।

हस्तकला का विकास मानव विकास के साथ भौतिक संसाधनों के अनुकूलन के अध्यायों का विकास हस्तकला के समाजीकरण को नया रूप और स्वरूप दिया है। प्राचीनकाल के ऐतिहासिक परिदृश्य पर गौर करें तो जैसे ही मानव पारिवारिक श्रृंखला से आगे का मार्ग प्रशस्त करता है। वह सामाजिक परिदृश्य से जुड़ने लगा है। सामाजिक सद्भाव और साहचर्य को सद्भावनापूर्ण करने के लिये सबसे प्रखर भूमिका शिल्पकारों की रही है। ऐसा दौर जब यांत्रिक विकास की अनदेखी की जाती रही है तब नये संसाधनों का निर्माण करबल एवं बाहुबल से होता रहा है। यह विकास का सौपान हस्तकला को आधारभूमि तैयार करता रहा है। मानव के सुखाभोग के लिये सबसे प्रभावी कारक हस्तशिल्प के माध्यम से रूपाकार होने वाले विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ रही हैं। ये वस्तुएँ खाद्य पदार्थ के रूप में, आवासीय व्यवस्था के लिये, प्रयुक्त सामग्री के रूप में तथा मानसिक मनोरंजन और मनोविनोद के लिये अपनाये जाने वाले कलाधर्मिता की इकाईयाँ रही हैं। यह सब आयाम यों तो हस्तशिल्प के क्षेत्र के ही रहे हैं पर इनकी महत्वपूर्ण भूमिका सामाजिक ताने–बाने को सुसमृद्ध रूप देने में रही है।

कलाधर्मिता आकर्षक और समृद्धि के नये सौपानों के साथ सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य को रूपायित करने में स्वर्ण, आभूषण का विशेष स्थान एवं महत्व है। हस्तशिल्प की बारीकियों का विवेचन करने पर यह मालूम होता है कि सोने एवं अन्य समकक्ष धातुओं के द्वारा निर्मित हस्तशिल्प बहुत ही प्रभावशाली और उच्च समाजीकरण को परिभाषित करता है। स्वर्ण आभूषण आदिकाल से ही चिंतन एवं आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। सनातन दर्शन के बात छोड़ दे तो पुराण एवं महाकाव्य काल में प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिदृश्य में स्वर्ण हस्तकला और कलाकारों का बहुत ही प्रभावशाली स्थान रहा है। राजकीय सत्ता के विकास के काल में राजा–महाराजा के शरीर में विभिन्न प्रकार के आवश्यक आभूषण के अलावा उनके श्रेष्ठता के प्रतीक मुकुट और बैठने का आसन भी स्वर्णिम हुआ करता था। महलों की महारानियाँ भी विभिन्न प्रकार की आभूषणों के माध्यम से अपने सौन्दर्य और समृद्धि का इजहार करती थी। इस तरह इस संदर्भ में निर्मित होने वाली कलाकृतियाँ के निर्माताओं को तत्कालीन समाज में बहुत ही आदर और सम्मान मिलता था।

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 4, December 2025 Impact Factor: 7.67

राजमहलों से जुड़े हस्तकलाकारों को समाज में बहुत ही आदर और सम्मान की नजरों से देखा जाता था। मानव की स्वाभाविक प्रक्रिया, प्रदर्शन और उपभोग की रही है। समाज में विभिन्न श्रेणियों की समाजीकरण व्यवस्था ने शिल्पकारों को भी अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित कर दिया। इस तरह हस्तकलाकार का सामाजिक क्षेत्र और दायरा समय–सापेक्ष परिवर्धित और परिमार्जित होता रहा है। स्वर्ण हस्तकला से जुड़े कलाकारों का एक अन्य क्षेत्र धार्मिक एवं सांस्कृतिक रहा है। धार्मिक परिदृश्य में सनातन परम्परा में देवी–देवताओं के विविध स्वरूपों की कल्पना की गयी है। इन देवी–देवताओं के स्वरूपों और चेतना फलक के अनुकूल स्वर्ण आभूषण का निर्माण हस्तकलाकारों द्वारा किया जाता रहा है। इन आभूषणों के माध्यम से देवी–देवताओं की नेयनाभिराम आकृति उद्‌घाटित होती रही है जिनके वर्णन और मिथकीय रूप आख्यानों में मिलता है।

हस्तशिल्प के उत्कृष्ट और अस्थाई पहचान देने वाले आभूषणों में हस्तकलाकारों के प्रतिभा और कार्य के प्रति सजगता के साथ ही धातुओं की जानकारी और उसमें मणियों का योग कर अलग–अलग पहचान वाली जेवरातों का निर्माण मध्यकालीन इतिहास में मिलता है। बात हिन्दू राजाओं की करें जो इस्लामिक सत्ताकाल के सुल्तानों और बादशाहों का इन सबके द्वारा धारित किये जाने वाले जेवरातों का निर्माण उच्च कोटि के हस्तशिल्प कलाकार करते थे। उन दिनों यांत्रिक विकास उतना नहीं हुआ था जिस कारण अपनी मेधा कल्पनाशक्ति, कार्यकुशलता के माध्यम से हस्तकलाकार सोने–चाँदी–ताँबा की धातुओं से निर्मित जेवरातों में मणियों का योगकर अलग–अलग तरह के वस्तुओं का निर्माण मांग और निर्देश अनुसार करते थे।

हस्तशिल्प कलाकारों की आर्थिक स्थिति सामान्य से उत्कृष्ट मानी जाती रही है परन्तु देखने में यह आता है कि हस्तकलाकार अपने शिल्प के परिमार्जन और परिष्करण में इस तरह से समर्पित रहते रहे हैं कि मिलने वाली पूंजी को अपने आर्थिक संसाधनों के विकास में नहीं महंगी वस्तुओं के रख–रखाव एवं सुरक्षा में अधिक ध्यान रखते थे। सम्भवतः इसी कारण महंगी धातुओं और अन्य शिल्पों के निर्माता तथा विक्रेता होने के बावजूद धन का उपयोग स्वयं के लिए संसाधनों को जुटाने की जगह अपने व्यवसाय को ही उन्नत करने में लगाने की परम्परा रही है। संभवतः यही कारण है कि स्वर्णकार परिवार में लोगों का रहन–सहन आवासीय व्यवस्था, वस्त्र परिधान सामान्य कोटि के रहते हैं। विशेष अवसरों को छोड़ दे तों अन्य अवसरों में भी हस्तकलाकारों के परिवारों में आर्थिक विकास के कोई भी आयाम नहीं दिखते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि हस्तकालाकार अपने जीविकोपयोगी वस्तुओं के संग्रह उपभोग की जगह अपनी कला धर्मिता को ही ज्यादा स्थान देते हैं।

मानव स्वभाव सामान्यतः उत्कृष्ट भौमिक सुखों की ओर अग्रसर दिखता है परन्तु हस्तकलाकारों में यह विशिष्टता नहीं दिखती। उनके आवास स्वाभाविक उपयोग के लिए आवश्यक परिक्षेत्र से अधिक नहीं होता है। संसाधनों की अपेक्षानुकूल पूर्ति न होना हस्तकला परिवारों की सबसे बड़ी विसंगति है। कुछ हस्तकलाएं तो ऐसी हैं जिन्हें तैयार करने वाले कलाकार प्राप्त धन से अपने प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। वर्तमान में बाजारीकरण के बढ़ते प्रभाव ने हस्तकलाकारों के आर्थिक स्थिति को बहुत प्रभावित किया है। हस्तकलाओं को न तो संरक्षण मिलता और न ही प्रोत्साहन। ऐसी स्थिति में हस्तकलाकारों की स्थिति दैयनीय होती जा रही है। बड़े उद्यमी हस्तकला वस्तुओं की जगह मशीनों से निर्मित मिलावटी धातुओं की वस्तुएं बाजार में इस तरह से डाल रहे हैं कि हस्तकलाकारों की पूंछ परख दिनांदिन घटती जा रही है।

एक दौर था जब हस्तकलाएं अनुवंशिक होती थीं जो पीढ़ीदरपीढ़ी किसी न किसी रूप में प्रभावी बनी रहती थीं भले ही आगली पीढ़ी उतनी कुशलन न रही हो पर वस्तु के निर्माण में आने वाली पद्धतियों और निर्माण कार्य के विभिन्न शैलियों से लोग अवगत हो जाया करते थे। परन्तु समय के बदलाव ने इस तरह के निर्माण कार्य को चौराहे पर लाकर खड़ा किया है। जिससे हस्तकलाकारों के सामने कठिनाइयों का नया दौर शुरू हो गया है। जिसका प्रभाव हस्तकलाकारों के परिवार के साथ ही

व्यवसाय पर भी दिखने लगा है। अब कलाकार अपनी कला के बल पर नहीं बल्कि जोड़–तोड़ की युगीन परिस्थितियों के अनुसार अपने को बदलने के लिए कोशिश में नजर आते हैं।

हस्तकला के क्षेत्र में विविधधर्मी कलाकार अपनी कलाओं का परिष्करण और परिवर्द्धन करते हैं। यह कला लोगों के जीविका का आधार के साथ–साथ उन्हें सामाजिक क्षेत्र में भी एक अलग विशिष्ट एवं सम्मानजनक स्थान देती है। कलाकृतियाँ ईश्वर की कृपा और माँ वीणापाणि के आशीर्वाद और कृपा से किसी को प्राप्त होती है। सामान्यतः कल्पना लोक में हर व्यक्ति कलाकार होता है लेकिन व्यावहारिक क्षेत्र में कलाधर्मिता जन्म–जात गुण होते हैं। जिनका परिष्करण सम्बन्धित व्यक्ति के दृढ़ता, आत्मविश्वास, चिन्तन और कला के प्रति आकर्षण से होता है। शिल्प के क्षेत्र में बात कष्टशिल्प की करें तो स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में प्रचुर कलाकार अपने कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। सामान्य श्रेणी की कलात्मक वस्तुएं तो अनुवांशिक दिखती है। जहां नवजात शिशु उम्र बढ़ने के साथ अपने माता–पिता एवं परिजनों के कार्य व्यवहार को देखकर उनका अनुसारण करते हुए कलाकृतियों के निर्माण में संलग्न हो जाता है। इस तरह की कलाकृतियां व्यक्ति को पहचान और जीविका तो देती हैं पर सम्मान और प्रसिद्ध नहीं दिला पातीं इस कार्य के लिए वही लोग सफल होते हैं जिनके पास जन्मजात कला प्रतिभा होती है और वे किशोरावस्था से ही कला के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनाने के लिए क्रियाशील होते हैं रीवा में कुन्देर परिवार द्वारा सुपाड़ी की कलाकृतियाँ एवं बावनी परिवार द्वारा निर्मित मूर्तिशिल्प डॉ. प्रणय द्वारा निर्मित कृतिकारों की मूर्तियां तथा आलेख इस क्षेत्र को एक अलग पहचान देते हैं।

हस्तकला भारतीय संस्कृति का अहम हिस्सा रही है और यह कला न केवल हमारे पारंपरिक शिल्प कौशल का प्रतीक है बल्कि यह हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर को भी व्यक्त करती है। हर हस्तकला की अपनी विशेषताएँ और समस्याएँ होती हैं, जिनका गहरा संबंध कलाकारों के जीवन, उनकी मेहनत और सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों से होता है। हस्तकला कला की वह विधा है जिसमें शारीरिक श्रम और रचनात्मकता का उपयोग करके विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुएं बनाई जाती हैं। हस्तकला में व्यक्तिगत कौशल, विशिष्टता और स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं का मिश्रण होता है।

संदर्भ स्रोत :–

1. डॉ. सुधा सोनी : मध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं आर्थिक इतिहास, शेखर प्रकाशन इलाहाबाद
2. डॉ. चित्रा आम्रवंशी : बघेलखण्ड का आर्थिक, सामाजिक इतिहास,
3. गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा राज्य का इतिहास, मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् भोपाल
4. डॉ. राधेशारण विन्ध्य की सामाजिक आर्थिक संरचना, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल
5. सुपाड़ी शिल्पकला संस्थान के प्रबन्धक से प्राप्त जानकारी पर आधारित
6. इतिहास बोध, साहित्य सम्मेलन प्रयागराज